5 वर्तमान में शिल्प समुदाय

सभी सरकारी योजनाओं और नीतियों एवं गैर-सरकारी तथा सरकारी एजेंसियों के प्रयासों के बावजूद भारत में शिल्प की स्थिति अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई है। शिल्पकार अपने शिल्प हेतु कच्चे माल या प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर होते हैं, जो तेज़ी से घट रहे हैं। ऐसे में शिल्पकार को अपने व्यापार के विस्तार अथवा उसे बनाए रखने में अपनी सीमित जमा पूँजी का निवेश करना पड़ता है, जबकि बाज़ार लगातार सिकुड़ रहे हैं अथवा फ़ैक्ट्री में बने कम कीमत के कपड़ों, चीनी खिलौनों, प्लास्टिक की चटाइयों या स्टेनलैस स्टील के घड़ों से पटे हुए हैं। पिछले सौ सालों में इन परिस्थितियों ने शिल्पकार की आर्थिक स्थिति और भी खराब कर दी है।

इस अध्याय में यह विश्लेषण किया गया है कि आज शिल्प समुदाय की स्थिति एवं स्तर इतना खराब क्यों है।

शिल्पकार के प्रति हमारा दृष्टिकोण बनाने वाली अभिवृत्तियाँ

शिल्प समुदाय के गरीब होने का पहला कारण शिल्प और हमारे समाज में शिल्प की भूमिका के प्रति हमारी समझ है। लोग शिल्पकार को किस दृष्टि से देखते हैं–एक कारीगर के रूप में या केवल एक मज़दूर के रूप में? ताजमहल का निर्माण एक कलाकार ने किया था या शिल्प समुदाय ने? क्या शिल्प मुख्यत: हाथ के काम हैं या यह हाथ, दिमाग और दिल के संयोजन के कौशल पर आधारित कार्यकलाप है? शिल्प और शिल्प समुदाय के प्रति आज जो दृष्टिकोण है, वही भारत में शिल्प की प्रगति रोकने वाला पहला अवरोध है।

जहाँ महिलाओं ने आजीविका हेतु कढ़ाई करना चुना है, वे वाणिज्यिक और पारंपरिक हस्तकार्य में स्पष्ट रूप से विभाजन करती हैं। दोनों अलग-अलग इकाइयाँ हैं और प्रत्यक्ष रूप से दोनों एक दूसरे को आच्छादित नहीं करतीं। प्रत्येक के लिए नियम और मानक अलग-अलग हैं। फिर भी बाज़ार में कार्य करने से इस बात पर अवश्य प्रभाव पड़ता है कि महिलाएँ एक कारीगर के रूप में या समाज के सदस्य के रूप में स्वयं के बारे में कैसा महसूस करती हैं।

वाणिज्यिक कार्य का पहला और शायद सबसे बड़ा प्रभाव डिज़ाइन या कला और शिल्प या मज़दूरी को अलग-अलग करना है। कारीगरों से वह बनाने के लिए कहा जाता है, जो किसी अन्य ने उनसे बनाने के लिए कहा होता है, बजाय इसके कि वे अपनी सौंदर्य चेतना से कार्य करें। जब भिन्न-भिन्न रंग के चार धागों का सेट रबारी महिलाओं को दिया गया, तो उन्होंने विवशता दिखाते हुए कहा कि यदि हम इनका प्रयोग करते हैं, तो यह रबारी नहीं रहेगा। पारंपरिक कार्य में, अलग-अलग रंग, टाँके, पैटर्न और मोटिफ़ नहीं होता—ये एक साथ इकाई में कार्य करते हैं। डिज़ाइन के प्रयोग से इन तत्त्वों को भिन्न-भिन्न दिखाया जाता है और नए तरीकों से उन्हें साथ-साथ रखा जाता है।

जब डिज़ाइन को प्रोफ़ेशनल डिज़ाइनर हेतु आरक्षित कर दिया जाता है और शिल्पकार को कारीगरी तक ही सीमित कर दिया जाता है, तो कारीगर मात्र एक मज़दूर बन कर रह जाता है।

– जूडी फ्रेटर
थ्रेड्स एंड वॉयसेस

सदियों से भारतीय हस्तशिल्प अपने अप्रतिम सौंदर्य और कार्यात्मक गुणों हेतु प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में भारत में डिज़ाइनर सामान्यतः शिल्पी होते थे। इन शिल्पियों के निर्देशन के अंतर्गत ही कारीगरों और शिल्पकारों का समूह कार्य करता था और ये संपूर्ण देश की भिन्न-भिन्न व्यापारिक संस्थाओं और क्षेत्रीय स्कूलों से संबंधित होते थे। यह उनकी सूक्ष्म समझदारी और असाधारण कौशल ही था, जिसने हमारे हस्तशिल्प को प्रभावशाली, डिज़ाइनयुक्त और सुंदर बनाया।

जिन शिल्पों का मुगल दरबार में उद्‌भव हुआ था, वे भी डिज़ाइन के विलक्षण परिष्करण को दर्शाते हैं। दरबार और सामंत वर्ग द्वारा इन शिल्पकारों को संरक्षण मिला। इन शिल्पों में डिज़ाइन अक्सर दरबार की चित्रकारी और लघु कला द्वारा प्रभावित होते थे, जो फ़ारसी या स्वदेशी स्रोतों से ली गई थी। ऐसे डिज़ाइन भारतीय कालीन, किनखाब, पेपरमैशे, पच्चीकारी इत्यादि में देखे जा सकते हैं। ये भारतीय हस्तशिल्प के विशिष्ट गुण हैं, जहाँ प्रायः कई विशिष्टताओं और कौशल वाले अनेक शिल्पकारों की क्षमताओं और कौशल

का वस्तु के डिज़ाइन और निर्माण में योगदान होता है। अतः डिज़ाइनर या मास्टर शिल्पकार संपूर्ण डिज़ाइन की कल्पना करता है और रूप, अनुपात तथा रंग के नए सृजनात्मक विचारों के विकास द्वारा समस्या का समाधान करता है।

फिर भी ऐसे कई शिल्प हैं, जहाँ शिल्पकार स्वयं ही डिज़ाइन बनाने और उत्पाद निर्माण करने का कार्य करता है, विशेषतया पॉटरी में, दीवारों की साज-सजावट करने में, कुछ विशेष प्रकार की कढ़ाई करने में तथा खिलौने बनाने एवं टोकरी बनाने में। कई अन्य शिल्प हैं, जहाँ पूरा परिवार या कारखाना या कारीगरों की कार्यशाला शामिल होती है। प्रत्येक मामले में मुख्य विचार यह है कि भारत में मास्टर शिल्पकार एक डिज़ाइनर, सर्जक एवं उत्पादनकर्ता होता है।

हस्तशिल्प के लिए भारतीय शब्द हस्तकला, हस्तशिल्प, दस्तकारी या कारीगरी है, जिनका अर्थ हस्तकार्य है, लेकिन आशय उन वस्तुओं से है, जो शिल्पकारी से निर्मित होती हैं अर्थात हाथों का विशिष्ट कौशल, जो कि कलाकारीपूर्ण भी हो। सुंदरता ऐसी वस्तुओं का अभिन्न अंग है और इसका अर्थ है कि उपयोग की वस्तु के प्रयोग से परे भी इसका महत्त्व है और जो देखने में भी सुंदर लगती हैं। हाथ से बनी वस्तु कभी-कभार ही केवल सजावट के लिए होती है और चाहे इस पर कोई सजावट न हो या इसे बहुत अधिक सजाया गया हो, इसका मुख्य प्रयोजन तभी सफल होता है, जब यह उपयोगी और सुंदर दोनों ही हो।

–लिविंग क्राफ़्ट्स ट्रेडिशन ऑफ़ इंडिया
कक्षा 11 के लिए हस्तकला की पाठ्यपुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी.

शिल्प और मशीन

उपनिवेशकाल से पूर्व भारत में कला और शिल्प समानार्थक थे। भारत में शिल्प समुदाय समाज का अति महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता था, जिस पर जीवन का विकास और उन्नति निर्भर करती थी। यूरोप में, मशीनों के उद्भव से शिल्प समुदायों की भूमिका कम हो गई और शिल्प पूर्णतः लुप्त हो गया। घरेलू उपयोग की वस्तुएँ, जो कभी शिल्प समुदाय द्वारा बनाई जाती थीं, अब मशीनों पर बड़ी मात्रा में बनाई जाने लगीं। हाथ से किए जाने वाले काम को बौद्धिक कार्य की तुलना में निम्नतर माना जाने लगा। मशीनों ने हाथ के काम का स्थान ले लिया, जो नीचा दिखाने वाला और पिछड़ेपन, दोनों ही का द्योतक था।

दो व्यक्तियों ने विश्व को इस दु:खद गलत धारणा के प्रति सचेत किया और वे हैं विलियम मौरिस और जॉन रस्किन। 1850 में उनकी 'हाथ से काम करने की खुशी का विनाशक' के रूप में मशीन की निंदा ने इंग्लैंड में कला और शिल्प आंदोलन का आरंभ कर दिया। उन्होंने व्यापक रूप से लोगों को यह स्मरण कराने के लिए लिखा कि मानव जाति मूलत: सृजनात्मक है और मशीनें जीवन का आनंद छीन रही हैं। उनके लेख ने भारत में कई चिंतकों को प्रभावित किया, जिसके कारण भारत में शिल्प परंपरा में नयी रुचि पैदा हुई और उनका अध्ययन आरंभ हुआ।

यथासमय प्रलेखन

ओवेन जोन्स की पुस्तक द *ग्रामर ऑफ़ ऑरनामेंट,* 1856 अच्छे डिज़ाइनों के सिद्धांतों का संकलन है, जिसमें फ़ारसी, भारतीय और हिंदू आभूषणों के उदाहरण थे। जोन्स 1851 में लंदन में प्रदर्शनी का आयोजन करने में भी शामिल थे, जिसमें बेहतरीन और अत्यधिक मँहगे भारतीय शिल्प का प्रदर्शन किया गया था, ताकि 'ब्रिटिश शिल्पकारी की खराब गुणवत्ता में सुधार लाने में इंग्लैंड की सहायता की जा सके, जो कि औद्योगिकीकरण के कारण क्षतिग्रस्त थी।'

इस प्रकार की प्रदर्शनियों के माध्यम से भारत की महान शिल्प परंपरा को अंग्रेज़ों के सामने प्रदर्शित करके यह भ्रांति दूर हो सकी कि भारत एक पिछड़ा और अविकसित अर्थव्यवस्था वाला देश है। परिणामत: इंग्लैंड में हुई प्रदर्शनियों से उच्च गुणवत्ता वाले भारतीय शिल्पों में रुचि बढ़ी।

सौभाग्य से, इस अवधि में कुछ अंग्रेज़ अधिकारियों ने पारंपरिक कौशल, उपकरणों, कार्यस्थलों, वस्तुओं आदि का प्रलेखन किया, विश्वकोश (एनसाइक्लोपीडिया) तैयार किए गए तथा जनगणना, मैपिंग और सर्वेक्षण किए गए। ये रिकॉर्ड सामयिक भारतीय डिज़ाइनरों तथा औद्योगिकीकरण के उपरांत भारत में शिल्प पुनरुद्धार कार्यक्रमों के लिए अमूल्य संसाधन सिद्ध हुए। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के भारतीय शिल्प पर हानिकारक प्रभावों के बावजूद इस अवधि में अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा शिल्पों का प्रलेखन करने के महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आए।

1880 में प्रकाशित एक पुस्तक *इंडस्ट्रियल आर्ट्स ऑफ़ इंडिया* में जॉर्ज सी. एम. बर्डवुड ने अपने समय में बंगाल में वस्त्र बुनाई की

दशा के बारे में बताया है। वे बताते हैं कि सूती और रेशमी कपड़े का उत्पादन बिहार, बंगाल, ओड़ीशा और असम में होता था। ढाका, जो अब बांग्लादेश में हैं, तब इसका एक प्रमुख केंद्र था।

> पहले ढाका में एक दुर्लभ मलमल का उत्पादन किया जाता था, जिसे गीला कर घास पर रखने से वह अदृश्य हो जाती थी और तब शाम की ओस और इसमें अंतर करना मुश्किल हो जाता था। इसलिए इसे 'शबनम' अर्थात 'शाम की ओस' कहा गया। दूसरे प्रकार को आब-ए-रवाँ या 'बहता पानी' कहा जाता था क्योंकि यह पानी में अदृश्य हो जाता था।

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय हस्तशिल्प को प्रलेखबद्ध करने के लिए 1880 में लिए गए निर्णय के परिणामस्वरूप *बर्डवुड जर्नल ऑफ़ इंडस्ट्रियल आर्ट्स ऑफ़ इंडिया* प्रकाशित किया गया था, जो कि आज भी डिज़ाइन और शिल्प सामग्री का बहुमूल्य स्रोत है।

बर्डवुड को भारत में औद्योगिकीकरण के विरोध से यह विश्वास हो गया कि महान भारतीय शिल्प 'हिंदू ग्राम के बेहतर धार्मिक संगठन' का परिणाम था, जहाँ कुम्हारों, बुनकरों, धातुकर्मकारों और जौहरियों ने अतुलनीय उत्कृष्टता की वस्तुओं का उत्पादन किया।

आनंद कुमारस्वामी

'शिल्पकार मात्र एक व्यक्ति नहीं है, जो अपनी व्यक्तिगत कल्पनाओं की अभिव्यक्ति करता है, अपितु वह ब्रह्मांड का भाग होता है और इसकी मूल सुंदरता और अपरिवर्तनीय कानूनों के आदर्शों, यहाँ तक कि वृक्षों व फूलों, जिनकी प्राकृतिक सुंदरता ईश्वर की देन से कम नहीं है, उसे अभिव्यक्ति देता है।' आनंद कुमारस्वामी ने भारत के शिल्पकारों के बारे में ऐसा लिखा है, जिनकी उत्कृष्टता कभी विवादस्पद नहीं रही है।

श्रीलंकावासी आनंद केंटिश कुमारस्वामी (1877-1974) को भारतीय कला और शिल्प के महान इतिहासकारों में गिना जाता है। भू-विज्ञान में स्नातक करने और मिनरलोजिकल सर्वे का निदेशक बनने के पश्चात् उन्होंने सिलोन सामाजिक सुधार समिति का गठन किया और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए आंदोलन चलाया। इसके परिणामस्वरूप सभी स्कूलों में क्षेत्रीय भाषा का अध्यापन होने लगा और भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार हुआ, जिसके बारे में उन्हें गहन जानकारी थी और जिसका वे अत्यधिक सम्मान करते थे। 1938 में वे भारतीय स्वतंत्रता संबंधी राष्ट्रीय समिति के सभापति बने। उन्होंने भारतीय दर्शन, धर्म, कला व मूर्तिविज्ञान, चित्रकला व साहित्य, संगीत, विज्ञान और इस्लामिक कला के प्रति लोगों की समझ को विकसित करने में भारी योगदान दिया। अपनी पुस्तक द *इंडियन क्राफ़्ट्समैन* में कुमारस्वामी ने शिल्पकारों को आधुनिकीकरण तथा यूरोपीय शासन के दुष्प्रभावों के बारे में बताया है और भारत में आदर्श औद्योगिकीकरण के पूर्व के जीवन की ओर वापस लौटने का आग्रह किया है।

अगस्त 1947 में उन्होंने एक स्मणीय टिप्पणी की–"भारतीय संस्कृति का महत्त्व इसलिए है क्योंकि यह एक संस्कृति है न कि भारतीय है।"

कमलादेवी, कुमारस्वामी से अमेरिका में बॉस्टन संग्रहालय में मिली थीं, जहाँ वे पूर्वी प्रभाग (ओरिएन्टल सेक्शन) के प्रमुख थे। यह एक रुचिपूर्ण घटना थी। कमलादेवी ने उनके बारे में लिखा– "आनंद कुमारस्वामी का हमारी सांस्कृतिक परंपरा के विशिष्ट विवेचक के रूप में विशेष स्थान था क्योंकि उनका दृष्टिकोण संपूर्ण था, जो कभी भी धुँधलाया नहीं। उन्होंने काफ़ी हद तक गांधी जी की तरह ही संस्कृति को सामाजिक प्राणाली के लिए महत्त्वपूर्ण सूचकांक माना।"

कला और शिल्प में अंतर

औद्योगिक क्रांति के आरंभिक प्रभाव और 1857 के विद्रोह तथा ब्रिटिशों के भारत पर राजनीतिक नियंत्रण के फलस्वरूप कई संस्थाओं की स्थापना की गई। भारतीय कला और संस्कृति के विकास के हित में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण और एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता की स्थापना की गई। 1857 में कोलकाता में पहले महत्त्वपूर्ण संग्रहालय, इंडियन म्यूज़ियम की स्थापना की गई। प्रारंभ में स्थापित भारतीय संग्रहालयों में कला और पुरातत्त्व विज्ञान हेतु अलग विभाग तथा भू-विज्ञान, जंतु विज्ञान और मानव विज्ञान हेतु दीर्घाएँ थीं, जहाँ पर प्राचीन काल की शिल्प कृतियाँ प्रदर्शित की गई थीं। संग्रहालयों में प्राचीन वस्तुएँ पूर्णतः सुरक्षित और संरक्षित थीं तथा यहाँ के संग्रह ने शिल्प परंपराओं का अध्ययन और शोध करने के विशिष्ट अवसर प्रदान किए।

1857 के पश्चात् अंग्रेज़ों ने कोलकाता, मुंबई और चेन्नई में कला विद्यालयों की स्थापना की, जहाँ अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम का अनुसरण किया जाता था। इसमें छात्रों को यथार्थ चित्रण, स्थिर–जीवन चित्र और दृश्यों व परिप्रेक्ष्य के पश्चिमी कला सिद्धांत सिखाए जाते थे। शीघ्र ही तैलचित्र (ऑइल पेंटिंग) ने भारतीय चित्रकला के पारंपरिक प्रकारों को प्रतिस्थापित कर दिया। पश्चिमी कला शैली में प्रशिक्षित विद्यार्थी कला के क्षेत्रों में आगे आए। पश्चिम कला से परिचित भारतीय उच्च वर्ग और राजवंश ने इस पश्चिमी भारतीय कला को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार से भारत में कला और शिल्प में अंतर आया। इसके कारण भारतीय शिल्प समुदाय का और पतन हुआ, जिसने कई सदियों से भारतीय समाज की पूरी वफ़ादारी से सेवा की थी।

वस्त्र मिलों, प्रिंटिंग प्रेसों और भारत की पहली फ़ैक्टरियों के उत्पादों ने घरों में हस्तशिल्प की वस्तुओं को प्रतिस्थापित कर दिया। विद्यालयों में सिखाई जाने वाली पश्चिमी कला की संकल्पनाएँ भारतीय परंपरा के एकीकरण के दर्शन, जिससे कलाशिल्प, वस्तुशिल्प, डिज़ाइन और विनिर्माण का एकीकरण हुआ था, से पूर्णत: भिन्न थीं। भारतीयों को पश्चिमी प्रगति का लाभ न मिले, इसके लिए देशज प्रेरणा के प्रयासों को छल द्वारा निष्फल कर दिया गया।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कुछ राजनीतिक और सामाजिक सुधारकों ने औपनिवेशिक आक्रमण के मध्य आर्थिक पुनर्गठन और सांस्कृतिक आत्मविश्वास के माध्यम के रूप में हस्तशिल्प उद्योगों के महत्त्व को पहचाना। उनके इस दृष्टिकोण ने कवि रवींद्रनाथ टैगोर को शांतिनिकेतन स्थित विश्वविद्यालय में शिल्प प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया और ग्राम उद्योग पर बल दिया, जिससे महात्मा गांधी ने भारत के स्वतंत्रता के संघर्ष की नींव डाली।

जैसा कि अध्याय–3 में विस्तार से दिया गया है, बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में शिल्प राजनीतिक विचारधारा और कार्य हेतु उत्प्रेरक बना। स्वदेशी आंदोलन 'भारतीयों द्वारा भारतीयों के लिए' ने श्रम और मानव की सृजनात्मकता के सम्मान को पुन: प्राप्त करने का प्रयास किया। एक साधारण सा शिल्प का उपकरण—चरखा—राष्ट्रीय विद्रोह का प्रतीक बना और हाथ से बुना कपड़ा आज़ादी की पोशाक बना।

तदुपरांत हथकरघा क्रांति से ही ग्रामीण उद्योगों का संवर्धन और नए औद्योगिक वातावरण में पारंपरिक कौशलों, उत्पादों और बाज़ारों का विकास

हुआ और इनकी सुरक्षा करने की आवश्यकता संबंधी राष्ट्रीय जागरूकता उत्पन्न हुई।

जाति में बँधा हुआ

गांधी जी को आशा थी कि स्वतंत्रता के पश्चात् जाति की संकल्पना धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और शिल्पकारों का हाथ से काम करने वाले श्रमिक के रूप में स्तर और गिर गया।

आज, यद्यपि सामाजिक उत्कर्ष हो रहा है तथापि, आनुवंशिकता, जाति और सामुदायिक संबंधों की शिल्प क्षेत्र में अभी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्हार या धातु कार्य, चमड़ा कार्य और बेंत व बाँस के कार्य में विशेष जातियों/समुदायों और कारीगरी के कार्यकलापों के बीच संबंध सर्वाधिक सुदृढ़ है। यहाँ पहली पीढ़ी के कामगारों की संख्या कम है, जाति और समुदाय के बंधन धीरे-धीरे टूट रहे हैं, विशेष रूप से अपेक्षाकृत गतिज विनिर्माण कार्यकलापों, जैसे दर्ज़ी के कार्य और काष्ठ कार्य में बड़ी संख्या में पहली पीढ़ी के कामगार आकर्षित हो रहे हैं।

यद्यपि औपनिवेशिक और पूर्व-औपनिवेशिक काल की अत्याचारी स्थितियाँ अब नहीं हैं, तथापि कारीगर जनसंख्या का अधिकांश भाग अभी भी बेहद गरीब है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि कई कारीगर अपने पारंपरिक व्यवसायों को छोड़कर अन्य प्रकार के कार्यों को अपना रहे हैं, जो अधिकांशतः अकुशल दिहाड़ी मज़दूरी का कार्य है, जिससे उन्हें अधिक पैसा मिल जाता है। इस प्रवृत्ति की एक गैर-सरकारी संगठन, श्रुति द्वारा 1987-88 में किए गए सर्वेक्षण से पुष्टि हुई है। इसमें बताया गया है कि पारंपरिक चमड़ा कारीगरों के आधे से भी अधिक घरों में परिवार के कई सदस्यों ने चमड़े का कार्य छोड़ दिया और वे नैमित्तिक मज़दूरों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

आज ग्रामीण गरीबों में अधिकतर लोग बुनकर हैं। यह हास्यास्पद है कि इतिहास की पुस्तकें हमें बताती हैं कि वे कभी भारत के अमीर व्यवसायियों में से एक थे। बुनकर संघ एक समय इतने अमीर थे कि वे दक्षिण भारत में प्रमुख मंदिरों के निर्माण को प्रायोजित कर सकते थे और यही नहीं उनकी अपनी सेनाएँ भी होती थीं।

आर्थिक निर्वाह्यता

अतीत में जिन पहलुओं को सबसे अधिक अनदेखा किया गया है, वे हैं शिल्पकारों की कम आय और कार्यदशाएँ। इस देश में कितने लोगों को यह जानकारी है कि शिल्पकार औसत भारतीय फ़ैक्टरी कामगार से भी कम कमाते हैं? वस्तुत:, कुछ मामलों में उन्हें वर्ष भर रोज़गार भी नहीं मिल पाता। अधिकांश हस्तशिल्प कारीगर अपने घरों में काम करते हैं और कई कच्चे माल की नियमित आपूर्ति पर निर्भर होते हैं, यह मौसम अथवा उनके परिव्यय पर निर्भर कर सकता है। खराब कृषि मौसम से स्वाभाविक है कि संसाधन और शिल्प उत्पादन में गिरावट आएगी। इसके साथ-साथ भूमि-रहित शिल्प समुदाय बाज़ार पर निर्भर होता है और इसलिए बाज़ार विशेष परिस्थिति में उतार-चढ़ाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है।

शिल्पकारों की कई भूमिकाएँ हैं – ये भारतीय शिल्प परंपराओं के ध्वज-वाहक हैं, प्राचीन प्रौद्योगिकियों और सांस्कृतिक परंपराओं के उत्तराधिकारी हैं, सामुदायिक आस्थाओं से बँधकर रह रहे कलाकार और सर्जक हैं, कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था में उत्पादक हैं और वे दार्शनिक हैं, जो आध्यात्मिक और भौतिक के बीच संबंध बनाते हैं। फिर भी, अपने लंबे इतिहास और स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न सरकारों द्वारा उनके लिए बनाई गई असंख्य योजनाओं के बावजूद कुछ हज़ार ही शिल्पकार होंगे, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में हैं। शेष अपनी आजीविका मात्र जीवित रहने के लिए चलाते हैं।

विश्वसनीय रूप से जनगणना में यह सुनिश्चित नहीं किया जाता है कि उसमें वे मौसमी कारीगर अथवा दक्ष कारीगर भी शामिल किए जाते हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में हाशिए पर आकर वैकल्पिक रोज़गार की तलाश में शहरों में झुग्गियों में रहने के लिए बाध्य हो जाते हैं। दिल्ली में हथकरघा बुनकर कूड़ा-बीनने वालों के साथ रहते हैं। कुछ टेलरिंग संस्थाओं से प्राप्त कपड़ों के टुकड़ों से चिंदी दरियाँ बनाते हैं या रज़ाइयों में डोरे डालते हैं। घास की चटाइयों के बुनकर और टोकरियाँ बनाने वाले खाली खेतों या भीड़-भाड़ वाले शहरों में फुटपाथ पर काम करते हैं और कभी-कभार ही उनकी गणना होती है। अंशकालिक या खाली समय में काम करने वाले शिल्पकार के रूप में वे अभी भी उत्पादक अर्थव्यवस्था का एक अंग हैं, चाहे उनका दर्जा निचला ही क्यों न हो और उनकी आय उनके परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए दिन भर के भोजन के लिए ही पर्याप्त क्यों न हो।

जैसी हमारे पास सूचना है, हाथ के काम से, पाँच सदस्यों के औसत परिवार के लिए ₹2,000 प्रति माह की औसत आय होती है। यह ₹13.50 प्रतिदिन प्रति व्यक्ति है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि 1997 में संसद में एक प्रश्न के उत्तर में गृह मंत्रालय ने बताया था कि दिल्ली के तिहाड़ जेल

में एक कैदी को भोजन सहित मूलभूत सुविधाएँ मुहैया कराने के लिए राजकोष से ₹48.60 प्रति दिन व्यय होता है। जब कई शिल्पकारों को इस तथ्य से अवगत कराया गया, तो उन्होंने दु:खी होकर व्यंग्य भाव से टिप्पणी की कि शिल्पकार्य करने से बेहतर जेल में रहना नहीं है क्या !

–जया जेटली
विश्वकर्माज़ चिल्ड्रन

कारीगरों की आय अत्यधिक कम है। 1987–88 में *श्रुति* द्वारा जिन कारीगरों का साक्षात्कार लिया गया था, उनकी औसत आय, कारीगरी के कार्यकलापों से ₹4,899 थी। बेंत और बाँस का काम करने वालों का समूह-वार औसत कम से कम ₹2,219, से लेकर ₹7,018 था, जो लकड़ी

का काम करने वालों का भी था। सर्वेक्षणों से यह भी पता चलता है कि उनके पास शायद ही कोई संपत्ति थी। सबसे बड़ी अचल संपत्ति घर है, जो कि अक्सर कच्चा या मिट्टी का बना होता है। भूमि न होने के मामले अधिक थे। श्रुति के सर्वेक्षण में 61 प्रतिशत कारीगरों के पास किसी भी प्रकार की कोई ज़मीन नहीं थी। किसी भी स्थिति में धारिता तीन एकड़ से अधिक नहीं होती थी। अधिकांश कारीगरों के लिए कृषि संबंधी सामग्री खरीदने में अधिक निवेश न करने की अक्षमता के कारण उत्पादन कम होता है। सामान्य तौर पर कारीगरों के पास उनके कार्य संबंधी उपकरण और यंत्र होते हैं। उनमें से कुछ के पास पशुधन अथवा पशु भी हैं। सर्वेक्षण किए गए 46 प्रतिशत कारीगरों के घरों में बिजली का कनेक्शन नहीं था।

शिल्पकारों की प्रमुख बाधाएँ

शिल्प समुदाय को सामाजिक व्याधि, जातिगत भेदभाव, गरीबी और सीमित परिसंपत्तियों जैसी बाधाओं के अलावा भी छः प्रमुख बाधाएँ प्रभावित करती हैं, जिन्हें संक्षेप में मुख्य रूप से दिया गया है–

लुप्त होता कच्चा माल

देश भर के शिल्प समुदायों के लिए सही गुणवत्ता का पर्याप्त कच्चा माल प्राप्त करना कठिन हो रहा है। प्राकृतिक संसाधनों में कमी होने के कारण उन्हें अब रद्दी और पुरानी सामग्री खरीदनी पड़ती हैं। आवश्यक पूँजी न होने के कारण वे पर्याप्त मात्रा में माल नहीं खरीद पाते।

कम होती बाँस की पैदावार तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र में इसके पूर्ण रूप से लुप्त होने के कारण औपनिवेशिक काल में इसके स्रोत पर आगे दी गई सामग्री भारत के शिल्प उद्योग के समक्ष आने वाले कच्चे माल के भारी संकट की ओर संकेत करती हैं।

कच्ची सामग्री की अनुपलब्धता और उनके प्रयोग पर लगे बंधनों से परे शिल्पकार प्रकृति के साथ उनके आपसी संबंध और उस पर अपने अस्तित्व के लिए निर्भरता को अच्छी तरह जानते थे। उदाहरण के लिए, बिहार की महिला चित्रकार रंग बनाने के लिए फूलों को कभी नहीं तोड़ती, बल्कि वे टूटकर गिरे फूलों का प्रयोग करती हैं। इसी प्रकार कलमकारी के लिए पुराने ज़ंग लगे घोड़े की नालों का प्रयोग कुछ रंगों को बनाने हेतु किया जाता है।

बाँस की कहानी

भारतीयों ने हमेशा से बाँस का प्रयोग कई प्रकार से किया है – मछली पकड़ने का जाल, टोकरियाँ, झूले, टिकठी, पुल, वर्षा से बचाने वाली टोपियाँ व छाते, चटाइयाँ, संगीत यंत्र, जल नली आदि इसके उदाहरण हैं। यह घर के निर्माण में, चहारदीवारी तथा बैलगाड़ी बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। कम लागत का घरेलू फ़र्नीचर और बाँस से बना कई प्रकार का घरेलू सामान किसी भी बाज़ार में आसानी से मिल सकता है। लेकिन हम उन अनगिनत छोटे-मोटे तरीकों पर प्रायः ध्यान नहीं देते, जिनके माध्यम से इस साधारण-सी सामग्री का लोगों द्वारा असंख्य वस्तुओं के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे लुहार की धौंकनी में, बढ़ईगिरी में बाँस की पिनों के रूप में या गाँव के बाज़ारों में खिलौनों के रूप में देखा जा सकता है।

लेकिन अंग्रेज़ वन अधिकारियों के लिए स्थानीय भारतीय पर्यावरण में वन की घास-बाँस की बहु-आयामी भूमिका का कोई महत्त्व नहीं था क्योंकि यह वन राजस्व में आता था। बाँस से टीक की पैदावार में भी व्यवधान आया, जो कि उनकी औपनिवेशिक वन नीति का अनिवार्य भाग था। 1920 में जाकर अंग्रेज़ों ने महसूस किया कि बाँस को महीन टुकड़ों में तोड़कर, इसे रसायनों में पकाकर, इसका गूदा बनाकर तथा इसको समतल बनाकर वे कागज़ बना सकते हैं। इससे अंग्रेज़ों के वन राजस्व में बढ़ोतरी होगी और साथ ही भारत के कथित पिछड़े क्षेत्रों का विकास (जैसा उन्होंने परिभाषित किया है) होगा। लेकिन, उन्होंने वन पर होने वाले उन प्रभावों की अनदेखी की, जो इन कार्यकलापों से होते। इसलिए जहाँ टोकरी बुनने वालों को उचित दरों पर बाँस बेचा जाता था, वहीं कागज़ उद्योग को भारी रियायत दी जाती थी।

स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय कागज़ मिलों को अत्यधिक कम दरों पर बाँस की आपूर्ति करना सरकार का परम कर्त्तव्य बन गया और कई दशकों तक बाँस की आपूर्ति अपरिवर्तित दरों पर सुनिश्चित हो गई थी। इससे वनों और शिल्पकारों पर पड़ने वाली अनदेखी आपदा की अभी भी कोई जानकारी नहीं मिलती।

> अरुणांचल प्रदेश में आपातानी जनजाति और विश्व भर के अन्य भागों में रह रही जनजातियों के लिए बाँस ही सब कुछ है–उपकरण, शस्त्र, आश्रय, भोजन, पात्र, नली, संगीत और यहाँ तक कि भगवान भी।
>
> –मैक्स मर्टिन
>
> *डाउन टु अर्थ*

आपको याद होगा कि कक्षा 11 की इतिहास की पाठ्यपुस्तक, *इंडिया एंड दि कंटेम्पररी वर्ल्ड–I* में इस बात पर अत्यधिक बल दिया गया है कि उपनिवेशवाद ने किस प्रकार संपूर्ण भारत के वनों को प्रभावित किया और वहाँ के निवासियों तथा उनके पारंपरिक व्यवसायों को हाशिए पर ला दिया। 1970 के अंत तक विश्व बैंक ने प्रस्ताव रखा कि 4,600 हेक्टेयर प्राकृतिक साल के वनों को उष्णकटिबंधीय चीड़ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए, ताकि कागज़ उद्योग के लिए लुगदी उपलब्ध कराई जा सके। स्थानीय पर्यावरणविदों के विरोध के बाद ही परियोजना पर रोक लगाई गई। अतः उपनिवेशवाद दबाव की ही नहीं अपितु विस्थापन, गरीबी और पारिस्थितिक वातावरण के संकट की भी कहानी थी।

भारतीय शिल्पकार प्रकृति के साथ अपने सहजीवी संबंध के प्रति पूर्णतया जागरूक हैं। वे यह जानते हैं कि अपने कच्चे माल को किस प्रकार आवश्यकता के अनुसार कम कर सकते हैं, पुनः उपयोग में ला सकते हैं, एवं किस प्रकार आवर्तित कर सकते हैं।

इसके विपरीत समकालीन कपड़े के कारखाने और स्टेनलैस स्टील उद्योग हमारी स्थानीय नदियों और मिट्टी को प्रदूषित करते हैं।

केरल की एक लकड़ी पर नक्काशी करने वाले शिल्पी ने बताया–''हम जंगलों में जाते हैं और ऐसा उचित पेड़ चुनते हैं, जो किसी भी प्रकार से विक्षिप्त न हो। तत्पश्चात् किसी शुभ दिन और समय पर हम मिठाई और चावल, पेड़ के समक्ष चढ़ाते हैं। प्रार्थना में हम पेड़ पर रहने वाले सभी जीवों, पक्षियों और कीटों से माफ़ी माँगते हैं तथा आश्वासन देते हैं कि यद्यपि हम उन्हें उनके घर और भोजन से वंचित कर रहे हैं, तथापि हम लकड़ी का प्रयोग अच्छे प्रयोजन के लिए करेंगे और एक भी टुकड़ा बरबाद नहीं होने देंगे।"

–शोभिता पुंजा
भारत के संग्रहालय

संरक्षण का अभाव

जहाँ पारंपरिक रूप से यजमानी संरक्षण प्रणाली अथवा स्थानीय मंदिर व धनी व्यक्ति, ज़मींदार अथवा छोटे राजा वर्ष भर या कम से कम संकट के समय सामान्यत: शिल्पकारों को समर्थन देते थे, वहीं आधुनिक नौकरशाह राज्यतंत्र ऐसा करने में असफल था। पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित आपसी संबंधों के आधार पर ग्रामीण बर्तन बनाने वाले, लुहार अथवा संगीतकार भी यह जानते थे कि उनकी सामाजिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। नीचे दी गई कहानी द्वारा राजस्थान के लोक संगीतकारों और उनके वंशानुगत संरक्षकों के रिश्तों को वर्णित किया गया है–

हमारे देश में व्यावसायिक लोक संगीतकारों के वंशों में सबसे बेहतरीन राजस्थान के थार मरुस्थल के लंगा और मंगनियार हैं।

इन दोनों समुदायों का सर्वाधिक आकर्षक पहलू समान परिवारों से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होने वाला संरक्षण है। जो मंगनियार किसी विशेष परिवार के लिए गाता है, उसे धानी कहा जाता है। उसे अपने संरक्षक के परिवार के किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम, जैसे जन्म, विवाह या मृत्यु के अवसर पर कुछ धनराशि दी जाती है और उसे वहाँ पर कार्यक्रम प्रस्तुत करना ही होता है। धानी का अधिकार खानदानी है, इसलिए यदि वह पचास परिवारों से संबंधित है और उसके दो पुत्र हैं तो उसका प्रत्येक बेटा इन 25 परिवारों का धानी बन जाएगा इत्यादि। यहाँ तक कि इन परिवारों के वे सदस्य, जो कार्यक्रम प्रस्तुत नहीं करते हैं, वे भी कुछ निर्धारित भुगतान के हकदार होते हैं।

लेकिन इस संबंध के कुछ पूर्णतया विशिष्ट पहलू भी हैं। क्या आप यकीन कर सकते हैं कि यदि कोई प्रस्तुतकर्ता अपने संरक्षक से खुश नहीं है, तो वह उसे 'तलाक' दे सकता है? ऐसी स्थिति में 'तलाक' शब्द का प्रयोग ही किया जाता है! अपना विरोध दर्ज कराने के पहले कदम के रूप में, प्रस्तुतकर्ता अपने संरक्षक के परिवार के सम्मान में बने गीतों को गाना बंद कर देता है। यदि इसका कोई प्रभाव नहीं होता है, तो वह अपने संरक्षक के घर के बाहर रेत में अपनी पगड़ियाँ दबा देता है। यदि इसका भी कोई प्रभाव नहीं होता तो वह संरक्षक के घर के बाहर अपने वाद्य यंत्रों के तार गाड़ना आरंभ कर देता है।

इसे अंतिम उपाय के रूप में देखा जाता है, जो यह दर्शाता है कि लंगा या मंगनियार अब कभी भी संरक्षक के घर में किसी भी समारोह में संगीत नहीं बजाएँगे। इसके परिणामस्वरूप अक्सर संरक्षक को गंभीर परिणाम झेलने पड़ते हैं, जैसे उसे अब अपने पुत्रों और पुत्रियों की शादी करने में कठिनाई आती है या वह स्थानीय समाज में हँसी का पात्र बन जाता है क्योंकि क्रोधित संगीतकार अपशब्द वाले गीतों से संरक्षक पर व्यंग करता है।

ऋण सुविधाएँ

इसकी तुलना में, आज के शिल्पकारों को उस लघु सहकारिता, जिससे वे संबंधित हैं, या फिर विश्व के किसी अन्य भाग में बैठे दूरस्थ क्रेता, जो इंटरनेट पर उनका उत्पाद खरीदते हैं, उनसे समर्थन मिल सकता है, लेकिन अधिकांशत: उन्हें अपना निर्वाह स्वयं ही करना होता है। विशेष रूप से किसी आपदा, जैसे भूकंप या सुनामी के बाद अथवा देश के अन्य भाग में कभी-कभार लगने वाले राज्य द्वारा आयोजित शिल्प बाज़ार में भाग लेने के लिए प्राय: बैंक से ऋण लेकर स्वयं की सहायता करनी होती है।

शिल्प समुदायों को अपना उत्पाद तैयार करने, कच्चा माल खरीदने, अपने उपकरणों में सुधार करने और नए बाज़ारों में आपूर्ति करने के लिए कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। असंगठित क्षेत्र के लिए बहुत कम ऋण सुविधाएँ अथवा बीमा नीतियाँ हैं। शिल्पकारों को स्वयं को ऋणदाताओं से मुक्त करने के लिए सुलभ ऋण की आवश्यकता होती है। बैंकों को शिल्प समुदायों के लिए अधिक उदारीकृत ऋण योजनाएँ बनानी चाहिए, ताकि उन्हें महाजनों के कर्ज़ से मुक्त किया जा सके और शिल्प के पुन: प्रवर्तन में निवेश करने में उनकी सहायता की जा सके।

पारंपरिक और स्थानीय बाज़ार

अब शिल्प समुदाय उन मूल्यों पर पारंपरिक माल का उत्पादन नहीं कर सकते, जो गरीब ग्रामीण उपभोक्ता वहन कर सकें। उपभोक्ता और ग्रामीण इतने गरीब हैं कि पारंपरिक शिल्पकार अपने सबसे बड़े ग्राहकों को खो रहे हैं और इस प्रकार से जाने-माने ग्राहकों और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नवाचार की सृजनात्मक प्रक्रिया को छोड़ चुके हैं।

साक्षरता और शिक्षा

भारत में शिल्पकार स्पष्ट रूप से शिक्षा और साक्षरता में अंतर व्यक्त करते हैं। शिल्पकार दक्ष होता है, लेकिन वह एक अटूट विकसित होती परंपरा का भंडार होता है। यह परिभाषा उसके लिए प्रयोग की जाती है, जो शिक्षित और प्रतिभायुक्त होता है। वह अपने शिल्प में दक्ष, परंतु पढ़ने अथवा लिखने में अक्सर निरक्षर होता है। हमारे शिल्पकारों को भविष्य की चुनौतियों का सामना

करने के लिए नियमित शिक्षा और साक्षरता दोनों की आवश्यकता है। वास्तविक प्रगति के लिए यह अनिवार्य है कि कारीगर साक्षर बनें। उनके विकास का यह महत्त्वपूर्ण पहलू बृहत कौशल प्रशिक्षण योजना का भाग होना चाहिए। हम शिल्प और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य में असफल रहेंगे, यदि शिल्प के प्रशिक्षु अथवा नियमित प्रशिक्षणार्थियों के रूप में निजी अथवा सरकारी केंद्रों से प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं युवाओं को साथ-साथ साक्षरता हेतु सुविधाएँ प्रदान नहीं की जातीं। साक्षरता, उत्पादन तथा विपणन को बढ़ाने की प्रक्रिया बैंक ऋण प्राप्त करने तथा वैयक्तिक अधिकारों को समझने और अन्य वर्गों से शोषण को रोकने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आगामी पीढ़ी के लिए उन्हें शिल्प संबंधी कार्यक्रमों का विकास करना चाहिए। तकनीकी शिल्प समुदाय में नेतृत्व के गुणों का विकास करने, तकनीकी सुधार में सहायता करने, उत्पादन बढ़ाने, बेहतर कार्य दशाओं का निर्माण करने और शिल्पकारों के आर्थिक स्तर को बढ़ाने के लिए कार्यक्रम और परियोजनाएँ बनाई जानी चाहिए। शिल्पकारों को यह सीखना चाहिए कि नए ग्राहकों तथा उनकी आवश्यकताओं को कैसे समझा जाए और अपने उत्पादों को गुणवत्तापूर्ण कैसे बनाया जाए। उन्हें सीखना चाहिए कि वे किस नयी सामग्री के साथ प्रयोग कर सकते हैं। इस देश में स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्याप्त आश्रय और कार्य-स्थल प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यदि हमारे शिल्पकारों पर उचित प्रकार से ध्यान नहीं दिया जाता, उनकी देखभाल नहीं की जाती, उन्हें मान्यता नहीं दी जाती, तो शिल्प कार्यकलापों का वास्तविक रूप से विकास नहीं हो सकता। ऐसा हाने पर ही हम यह आशा कर सकते हैं कि शिल्प अपनी जीवंतता और गरिमा को भविष्य में संचारित कर सकेगा।

प्राचीन भारत में, शिल्प और कला दोनों का स्थान समकक्ष था, दोनों ही घर, मंदिर और दैनिक जीवन का अभिन्न अंग थे और प्रदर्शनियों अथवा बाज़ार में बेचने वाली वस्तुओं के रूप में नहीं देखे जाते थे।

– लैला तैयबजी

शिल्पकारों को समाज में उनके उचित स्थान पर पुन: पदस्थापित करने के लिए भारतीयों के दैनिक जीवन में शिल्प को वापस लाना पहला कदम होगा। भविष्य में भारत के युवा शिल्पियों को बढ़ावा देने से पारंपरिक शिल्प, समाज में एक नया मुकाम पा सकेगा।

अभ्यास

1. शिल्पकार वर्तमान आर्थिक स्थिति में अपना दर्जा और सम्माननीय स्थान पुन: कैसे प्राप्त कर सकते हैं?
2. निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए बाल श्रम के हानिकारक प्रभावों के बारे में एक लघु लेख लिखें–
   - आर्थिक शोषण
   - लंबी कार्यावधि
   - शैक्षणिक तथा मनोरंजन सुविधाओं का अभाव
   - स्वास्थ्य संबंधी जोखिम – दुर्घटनाएँ, बीमारी, हिंसा, रसायनों का हानिकारक प्रभाव
   - भावात्मक तथा मानसिक दुर्व्यवहार तथा शोषण
3. अपने क्षेत्र के लोगों को संबोधित करने हेतु 'विलुप्त होते कच्चे माल' पर भाषण लिखिए। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में अपने राज्य के शिल्पों के योगदान का वर्णन कीजिए। कच्चे माल की कमी के कारण और उसके प्रभाव की भी चर्चा कीजिए।
4. हाथी दाँत, शहतूश और चंदन की लकड़ी– इन सभी वस्तुओं पर प्रतिबंध लगा है। इनके गैर कानूनी व्यापार का खुलासा करने के लिए 'स्टिंग ऑप्रेशन' करने की नीति निर्धारित करें।
5. प्राथमिक स्कूल के बच्चों के लिए एक पाठ योजना तैयार करें, जिससे उन्हें लेखन/अंकगणित जैसा कोई एक साक्षरता कौशल और अपने परिवार के शिल्प को रुचिपूर्ण ढंग से सीखने में सहायता मिल सके।
6. क्षेत्रीय परंपराओं में शिल्पकारों एवं उनके द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कच्चे माल के बीच गहरा संबंध होता है। किसी एक ऐसी परंपरा/धार्मिक अनुष्ठान/संस्कार/त्योहार पर शोध करें और उसका सविस्तार वर्णन करें।